''कवि घनानंद के काव्य में चित्रित कलापक्ष का अवलोकन''

'डॉ॰ ज्योत्स्ना

सहायक प्रोफेसर,

किशन लाल पब्लिक कॉलेज,

रेवाड़ी (हरियाणा)।

कला का जन्म मधुर एवं सुन्दर जीवन जीने के लिए हुआ है क्योंकि इस कला से दुखमय जीवन में आनन्द प्राप्ति होती है। व्यक्ति का मानस क्षितिज एवं हृदयाकाश उदार, उन्नत एवं व्यापक होता है। कला सुख को सौगुणा कर देती है तो दुख को हजार गुणा कम कर देती है। मानो जलते हुए बदन पर चंदन के लेप की–सी शीतलता मिलती है। कला ही में वह शक्ति विद्यमान है, जिससे व्यक्ति विशेष का सुख–दुख जन साधारण का हो जाता है और वह मानव–मानव को एक होने का अहसास कराती है। इतना ही नहीं वज्र हृदय जैसे मनुष्य में कोमल कमल के फूल खिला सकती है।

कला क्या है? साहित्य कोश बतलाता है.....''कला मानव संस्कृति की उपज है। निसर्ग से युद्ध करते हुए मानव ने श्रेष्ठ, संस्कार के रूप में जो कुछ सौन्दर्यबोध प्राप्त किया है, 'कला' शब्द में उसका अन्तर्भाव है।''[1] कला में सत्यम्, शुभम्, सुंदरम् के साथ कल्पना के आदर्श लोक के निर्माण की इच्छा एवं सुंदर रूप तथा रूप विधान में मानव की स्वाभाविक रुचि रहती ही है।''[2]

काव्य का कला पक्ष का श्रीगणेश छंदों से होता है और काव्य में छंद है तो लय, गति, यति तो होगी ही। घनानंद का छंद विधान इतना मजबूत है कि वह हिन्दी साहित्य की प्रमुख देन मानी जा सकती है। काव्य का कला पक्ष का दूसरा शोभा कारक अभिधान है अलंकार। अलंकारों में अनुप्रास यमक, वीप्सा आदि अलंकार काव्य को स्मरणीय, रमणीय, सुरीला, आकर्षक एवं सुंदर बना देते हैं। नारी कितनी भी सुंदर हो पर उसे परिधान तो चाहिए ही, तभी उसमें कला है वरना निर्वस्त्र तो प्रकृत रूप है। अलंकार काव्य में भार स्वरूप न होकर पोषक रूप में आते हैं तो काव्य श्रेष्ठ हो जाता है। घनानंद के काव्य में अलंकारों की उपस्थिति इसी रूप में हुई है।

काव्य के कलापक्ष का तीसरा अभिधान है ध्वनि या अर्थबोध। ऐसे शब्दों द्वारा भावों को बांधा जाए जिसमें स्वाभाविक रूप से व्यंग्यार्थ सार्थक हो जाए। इस प्रसंग में घनानंद काव्य की कोई जोड़ नहीं वे रीतिकालीन कवियों में आगे और स्वतंत्र दिखाई देते हैं। काव्य के कला पक्ष का चौथा अभिधान है रस। ध्वनि–रस निष्पति में सहायक होती है। घनानंद–काव्य में ध्वनि और रस का समायोजन विलक्षण एवं चमत्कृत कर देने वाले रूप में प्रयुक्त हुआ है।

कला पक्ष का पांचवा अभिधान है भाषा एवं शिल्प–शैली। काव्य में विवेच्य भाव विचार, प्रसंग, स्वभाव, संघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व आदि भाषा द्वारा ही व्यंजित होते हैं। किस काव्य में किस प्रसंग में या स्थिति व भाव में किस प्रकार की भाषा शैली व शिल्प का प्रयोग होना चाहिए इसमें रचनाकार को कुशल होना चाहिए। भाषा शैली काव्य का ही नहीं रचनाकार के भी व्यक्तित्व का परिचायक होता है।

काव्य कला का अगला अभिधान है संगीतात्मकता या गेयता। घनानंद के काव्य में श्रृंगार, शांत और करुण रसों के कारण माधुर्य गुण स्वाभाविक रूप से चित्रित हो गए हैं। काव्य कला का अंतिम अभिधान है औचित्य। किसी भी रचना के पीछे देश, काल और पात्र का औचित्यपूर्ण प्रभाव अवश्य रहता है। घनानंद की

काव्य रचनाएं अपने युग की रचनाओं में एक प्रतिमान स्थापित करती है। तत्कालीन कवियों एवं रचनाओं से घनानंद ने अपनी स्वतंत्र पहचान खड़ी की है। घनानंद की रचनाओं का कलापक्ष शिखर पर विराजमान प्रतीत होता है।

भाषाविज्ञान की दृष्टि से भाषा ध्वनि, प्रतिकों की ऐसी संस्था है जिसके माध्यम से हम अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्त एवं संप्रेषित करते हैं। यों तो भाषा के अनेक रूप होते हैं जैसे मृत भाषा, जीवित भाषा, प्राचीन भाषा, मध्यकालीन भाषा, अर्वाचित भाषा, प्रचलित भाषा काव्य भाषा, गद्य की भाषा, नाटकीय भाषा, भ्रष्ट भाषा, ग्रामीण भाषा, (गंवार भाषा), शहरी भाषा, महानगरीय भाषा, मिश्रित भाषा, शुद्ध भाषा, विकृत भाषा, शास्त्रीय भाषा, तकनीकी भाषा, विदेशी भाषा, देशी भाषा, न्यायालीयीन भाषा, प्रशासकीय भाषा, बोल–चाल की भाषा इत्यादि।

घनानंद का काव्य रीति काव्य का समय रहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनका समय 1700–1900 से माना है।''[3] घनानंद का जीवनकाल 1730 से 1761 ठहरता है। रीति काव्य की मुख्य भाषा ब्रज भाषा है।''[4] हालांकि घन आनंद की ब्रज भाषा पर जैसी पूर्ण पकड़ थी वैसी किसी अन्य की न रही होगी। भाषा इनके अंतरंग हृदय से संप्रक्त होकर इनकी अनुगामिनी हो गई थी। वे ब्रज भाषा को जिस भाव भंगिमा में अभिव्यक्ति देना चाहते थे उसी रूप में प्रस्तुत कर देते थे। जब जैसी आवश्यकता होती थी तब वे उसे पारंपारिक बंधन से मुक्त कर अपनी अभिनव पद्धति पर सटिक बैठा देते थे। भाषा की भाव भंगिमा घनानंद की अमूल्य देन मानी जा सकती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने घनानंद की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए लिखा है– ''घनानंद जी उन विरले कवियों में हैं जो भाषा की व्यंजकता बढ़ाते हैं। अपनी भावनाओं के अनूठे रूपरंग की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला हिंदी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ। भाषा के लक्षण और व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी।''[5]

घनानंद की ब्रज भाषा में अन्य प्रांतिय भाषाओं का मिश्रण न के बराबर है। इनकी भाषा पूर्णतः साहित्यिक रही है। इनकी भाषा में प्रसाद एवं माधुर्य गुण स्वाभाविक रूप से समाहित हैं। यहाँ तक कि कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति में तो इन्हें सिद्धि ही प्राप्त प्रतीत होती है। शब्द शक्ति के प्रयोग में लक्षणा से अधिक व्यंजना का प्रयोग हुआ है। इससे अपने पूर्ण वैभव पर भाषा विराजमान प्रतीत होती है।

अति सूघो सनेह को मारग है,
जहाँ नेकु सयानप बांक नहीं।
तहाँ सांचे चलै तजि आपुन पौ,
भभकै कपटी जे निसांक नहीं।
घन आनंद प्यारे सुजान सुनो,
यहाँ एक ते दूसरो आंक नहीं।
तुम कौन थौ पाटी पढे हौ लला,
मन लेहु पै देहु छटांक नहीं।।''[6]

काव्य में संगीत का समावेश हो तो फिर क्या कहना। शब्दों का ऐसा प्रयोग जहाँ शब्द बोलते हुए लगें। शब्दों में कथ्य के अनुरूप ध्वनि निष्पन्न होने लगे। इसे यों कहा जहाँ ध्वनि बिम्ब उच्चारित होने लगे। इसे नाद व्यंजना कहा जा सकता है। विरही कविवर घनानंद जब पवन को सुजान के लिए संदेश

वाहक बनाकर भेजते हैं ताकि पवन सुजान की पग धूलि ले आए, जिसे घनानंद अपने नयनों में अंजन की तरह लगाकर स्पर्श सुख का आभास ले सके –

ऐरे वीर पौन, तेरी सबै ओर गौत, बीरी

तो सो और कौन, ननै ढर कौ ही बानि दै।

आनंद–निष्णत, सुखदान दुखियाति दै।

जागत के प्रात, ओछे बड़े सो समान घन,

जात उजियारे गुन–मारे अंत मोही प्यारे।

अब हवै अमोही बैठे पीठि पहचानि दै।

विरह–बिथाहि मूरि, आंखिन मैं राखौ पूरि,

धुरि तिन पायन की हा हा नैक आनि दै।''[7]

यह सत्य है कि हिंदी और संस्कृत के लक्षण ग्रंथों में लक्षण और व्यंजना के उत्कर्ष और इनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदों की चर्चा की गयी है और उनके शास्त्रीय विवेचन का गंभीर प्रयास भी लक्षित होता है, इस दिशा में घनानंद का प्रयास नितान्त मौलिक है, इनकी समता न संस्कृत के किसी कवि से की जा सकती है और न उर्दू और फारसी के ही कवि से। फारसी और उर्दू में लाक्षणिक एवं व्यंजना वलित बहुत कुछ प्रयोग मिले हैं, परन्तु घनानंद जैसे अन्तरवृत्तियों के निरुपण में सक्षम लाक्षणिक प्रयोगों का वहाँ नितान्त अभाव है। घनानंद जी की वाणी भावना के जिन मार्गों से चलकर अपने स्वरूप का निर्माण करती रही, वहाँ तक जाने का साहस शब्द और अर्थ के अपार वैभव से मंडित होने पर भी बहुत से कवि नहीं कर सके।

शब्द शक्ति में अभिधा निम्न, लक्षणा मध्यम एवं व्यंजना उत्तम कोटी की मानी गई है। व्यंजना में कवि अपने विचारों व अनुभूतियों को व्यंग्यार्थ अथवा ध्वन्यार्थ के माध्यम से रचता है। व्यंजना शब्द शक्ति का प्रयोग चमत्कार उत्पन्न करने के लिए न कर घनानंद ने अपनी भाषाभिव्यंजना को सशक्त और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए स्वाभाविक रूप से या अनायास प्रयोग किया है।

''परकाजहिं देह को धारि फिरो परजन्य जथारथ हवै दरसौ।

निधि–नीर सुधा के समान करौ सब ही विधि सज्जनता सरसौ।

घन आनंद जीवन–दायक हौं कछू मेरियौ पीर हियै परसौ।

कबहुं वा विसासी सुजान के आंगन मो अंसुवानि हूं ले बरसौ।''[8]

भक्तिकाल के बाद रीतिकाल में ब्रज भाषा एकमात्र काव्य भाषा बनी और अवधी का काव्य भाषा पद छिन गया।''[9] घनानंद ने तो ब्रज भाषा पर ऐसा जादू डाला कि आगे के कवियों ने आँख बंद कर इसे अपना लिया। यह हिंदी साहित्य की बहुत बड़ी देन है। मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा में लालित्य लाने तथा विचारों को सशक्त, रोचक एवं प्रमाणिकता के साथ रखने के लिए किया जाता है।

मुहावरे वाक्यांश होते हैं, जबकि लोकोक्ति या कहावत अपने में पूर्ण। कहावतों की प्रमाणिकता पर कोई संदेह नहीं रहता। वे लोक परम्परा से अनुभव–प्रसूत होते हैं। जीवन के प्रायः हर पहलुओं पर मुहावरे

और कहावतों का व्यवहार यथा स्थान होता रहा है। मुहावरे स्वतंत्र नहीं हैं, परन्तु कहावतें स्वतंत्र भी हैं। लोकोक्तियों के साथ अतीत के किसी न किसी घटना, अनुभव, विश्वास एवं चिंतन का गहरा नाता होता है। जीवन के सत्यों के उद्घाटन में लोकोक्तियों का महत्वपूर्ण हाथ होता है। इसी से साहित्य व काव्य में इसका प्रयोग प्रमुखता से यथोचित रूप में होता है। तभी डॉ0 प्रदीप कुमार सिंह ने कहा है – ''लोकोक्ति ग्रामीण जन का नीतिशास्त्र है जिसमें बुद्धि और अनुभव दोनों का संतुलन एवं संगम रहता है। कहावतों के पीछे व्यावहारिक दक्षता की कथा छिपी होती है।''[10]

घनानंद कृत काव्यों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवित्त में विशेष कर मुहावरे–लोकोक्तियों का भरपूर व्यवहार किया है, परन्तु ये मुहावरे व लोकोक्तियाँ अबरी–फारसी की अभिव्यंजना शैली से प्रायः वंचित है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने घनानंद के मुहावरों के प्रयोग की पद्धति निश्चय ही फारसी की प्रेरणा से ग्रहण ी है। परन्तु फारसी के मुहावरों की योजना नहीं की, जैसा उर्दू वालों ने किया। मुहावरों एवं कहावतों के सम्यक् प्रयोग से घनानंद की रचना अधिक अनुभव गम्य हो गई है। जैसे बिना विचार किए जो व्यापार करता है उसे असफलता निश्चित है। इसका प्रयोग घनानंद ने कितना सटिक किया है –

''आगे न विचार यो अब पाछे पछताए कहा,

मान मेरे जियरा बनी को कैसो मोल है।''[11]

द्वारिका प्रसाद सक्सेना के विचारों को रखना असंगत न होगा– ''घनानंद की भाषा सुसज्जित करने में विविध मुहावरों के प्रयोग में अत्यंत निपुण है और उन्होंने कविता को सजीव एवं मार्मिक बनाने के लिए विविध प्रकार के मुहावरों को बड़ी तत्परता के साथ अपनाया है, जिनमें उक्ति सौंदर्य के साथ–साथ अर्थ गांभिर्य भी भरा हुआ है।''[12] मुहावरों एवं कहावतों के प्रचुर प्रयोग से इनकी काव्य–भाषा का सौंदर्य ग्रामीण बाला का सा नैसर्गिक सौंदर्य अपनी चरम सीमा पर है। मुहावरों और कहावतों के व्यापक प्रयोग से भाषा के लालित्य में स्वाभाविकता लाने में यों कवि ने काव्य में जो दिया है वे साहित्य जगत् में मील के पत्थर सिद्ध हो सकते हैं।

हिंदी साहित्य कोश भाग–1 में छंद के बारे में लिखा गया है – ''अक्षर अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा, गणना तथा यति–गति आदि से संबंधित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य रचना, छंद कहलाती है।''[13] काव्य और छंद का संबंध अटूट है। आदिकाल से काव्य छंदों में ही रचा जाता रहा है। छंद का सीधा संबंध संगीत से है। संगीत में राग मात्राओं व ताल में बंधे होते हैं। वैदिक साहित्य शास्त्रीय छंदों व शास्त्र मुक्त छंदों से युक्त है। मूलतः शास्त्र मुक्त छंद भी स्वर, लय एवं संगीतात्मकता उत्पन्न करता है।

''वैदिक छंदों में गायत्री, अनुष्टुप, वृहती, पंक्ति, जगती, जाति के अनेक छंद मिलते हैं। वैदिक छंदों में मात्रा विचार के स्थान पर अक्षर गणना एवं ध्वनि साम्य पर रखा जाता है। इसमें स्वरों के उदात्त, अनुदात्त, त्वरित, अरोह–अवरोह पर आधारित है। इसके साथ गीतात्मक स्वराघात का भी नियम है।''[14]

घनानंद का काल छंदबद्ध कव्य रचना का युग रहा है। शासक भी रसिक होते थे। कवि गण अपनी छंदोबद्ध रचनाओं से उन्हें आल्हादित करते रहते थे। रीतिमुक्त काव्य प्रवाह के महाकवि घनानंद इसी काल के हैं। कवि गण अपनी रचनाओं में चारुता लाने एवं भव्य बनाने हेतु छंद विधान का पालन अपनी रचनाओं को मंत्रमुग्ध कर देती थी। ''घनानंद का समग्र साहित्य छंदों में रचित है। इनके प्रिय छंद हैं कवित्त, सवैया, त्रिलासीर, ताटक, निसानी, सुमेरु, त्रिभंगी, शोमन, दोहा, चौपाई, दुर्मिल, मुक्तहारा, मतगयंद, अरसाद आदि। कवित्त और सवैया इनके सर्वाधिक मनपसंद छंद हैं।''[15]

घनानंद का सवैया छंद हिन्दी काव्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ है। हिंदी साहित्य के लिए ऐसे सवैया छंद घनानंद की विशिष्ट देन है। नायिका वर्णन में वसंततिलका, वीर रस में शिखरणी, श्रृंगार रस में पृथ्वी, हास्य रस में दीपक छंद को उपयुक्त बताया गया है।

काव्य का प्राण तत्त्व छंद रहा है। घनानंद के काव्य में रसों के अनुकूल छंदों का निर्माण हुआ है। काव्य के साथ छंद का नित्य का संबंध रहा है। जैसे नदी तटों में बंध कर गतिमान होती है। जैसे चुम्बक लौह चूर्ण को आकर्षित करती है वैसे ही घनानंद के काव्य भाव रूपी चुम्बक छंदों को आकर्षित करते हैं और तब रस की विद्युत धारा उसमें प्रवाहित होने लगती है। जैसे धातु विज्ञ जानता है किस धातु में कौन–सा नग बैठाना है, वैसे ही किस भाव चित्रण में कौन सा छंद लगाना है इसमें घनानंद इतने माहिर थे कि उनके काव्य भाव उसी छंद में बंध कर फूटते थे।

अलंकार सौंदर्य विधान है। साहित्य में अलंकार का वही स्थान है जो ऊपर वर्णित है। अलंकार शब्द अलम+कार के योग से निर्मित है। अलम् का तात्पर्य है भूषण एवं कार का अर्थ होता है करने वाला। अर्थात् अलंकृतःअलंकारः। जो अलंकृत व भूषित करे वह अलंकार है।''[16] काव्य में अलंकार ऊपर से नहीं अंदर से आते हैं तो वही वास्तविक अलंकार होते हैं। काव्य स्वतः वाणी का श्रृंगार है। यदि श्रृंगार को श्रृंगार मिल जाए तो क्या कहना।

डॉ0 गौड़ के विवेचन से विदित होता है घनानंद काव्य में अलंकार सीमित है। वे लिखते हैं– आनंदघन की रचनाओं में अलंकारों का प्रयोग अत्यल्प है।''[17] घनानंद ने लगभग सभी अलंकारों का प्रयोग किया है, परन्तु अलंकार उनके काव्य में भावों को तीव्रता प्रदान करने के हेतु ही प्रयुक्त हुए हैं। कहीं पर भी अलंकार प्रदर्शन के लिए अलंकार की योजना नहीं की गई। जैसे केशव ने सजावट व प्रदर्शन के लिए किया है।''[18]

घनानंद ने अनिंद्य सुंदरी सुजान के रूप चित्रण में अलंकारों के भार से अपनी रचना को बोझिल नहीं बनाया है। यह घनानंद की अतुलनीय देन कही जा सकती है। सभी आलोचकों को इनकी रचना प्रतिभा पर तनिक भी भ्रम नहीं है।

तीछन ईछन बान बखान सौं,

पैनी दसान ले सान चढ़ावत।

प्राननि प्यासे, मरे अति पानिप,

मायल घायल चोप चढ़ावत।

यो घनआनंद छावत भावत,

जान संजीवन ओर तें आवत।

लोग है लागि कवित्त बनावत,

मोहि तौ मेरे कवित्र बनावत।''[19]

घनानंद साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात होने में तनिक भी विलम्ब नहीं होता कि इनका काव्य सरसता एवं मधुरता में चरम उत्कर्ष पर आसीन प्रतीत होता है। इनकी अलंकार क्षेत्र में महती देन है, विरोध मूलक एवं साम्य मूलक अलंकारों का अधिकतम प्रयोग। हिंदी साहित्य में घनानंद की महत्वपूर्ण देन है – नूतन बिम्बों की खोज अभिनव उपमानों का प्रयोग एवं इसकी प्रस्तुति में असाधारण दक्षता। ऐसी क्षमता

बिहारी, तथा अन्य कवियों में भी प्रायः प्राप्त नहीं होती। बिहारी में जहाँ रूप चेतना के बिम्बों का प्राधान्य है परन्तु घनानंद के काव्य में सर्वत्र रूप चेतना की नहीं अपितु अनुभूतियों एवं भावों के मार्मिक बिम्बों को सजाया है। जो इतना अनुभूतिजन्य है कि उस बिम्बात्मक प्रवाह में पाठक व श्रोता प्रवाहित हुए बिना नहीं रहता।

भावात्मक बिम्बों का प्रयोग संयोग एवं वियोग के समय की सुखद व मार्मिक दशाओं के चित्र निर्मित करने में हुआ है। संयोग के क्षण उल्लास की, वियोग के क्षण अभिलाषा, चिंता, स्मृति, गुण, कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता आदि के दशाओं व भावों के बिम्बों की सृष्टि अद्‌भुत है। निम्नांकित छंद में सूरत के पहले गोपी की इच्छा की मनःस्थिति को व्यक्त करने का बिम्ब देखने योग्य है –

कृष्ण के स्वागतार्थ गोपियाँ स्वयं का शृंगार कर रही हैं। जूड़ों में पुष्प, नयनों में काजल, अंगों में उबटन, चंदन, गले व वक्ष में मोतियों की माला, घी के दीप और नाना शृंगार करने का बिम्ब कवि ने जब जबरदस्त दिया है –

आज हमारै आवैला घनस्याम आनंद बघावरो मनाइस्यां।

फूला केस गुंदाइस्यां काजलरी देा बनाइस्यां।

सौंधा भीनी कांचली कसाइस्यां, मोत्यारा हार ढुलाइस्यां।

आंगन री चंदन लिपाइस्यां गज मोत्यां चौक पुराइस्यां।

घीयां दविला जगाइस्यां, चित्र सारी ढोलीयो बिछाइस्यां।

हंसि–हंसि कण्ठ लगाइस्यां आनंद घन झड़ बरसाइस्यां।।''[20]

नये युग की चेतना को घनानंद ने अपने बिम्बों में भी प्रदर्शित किया है। सौंदर्यानुभूति के अनगिनत नवीन बिम्बों का मार्मिक एवं मंजुल प्रस्तुति घनानंद–काव्य की अमूल्य देन है। घनानंद का बिम्ब विधान इस दृष्टि से भी साहित्येतिहास में अनूठा माना जाता है

मानव स्वभाव से ही प्रतीकों में सोचता, समझता है। यही कारण है कि अमूर्त चिंतन विकसित स्तर का माना जाता है। कुछ प्रतीक देश, काल व पात्र के अनुरूप होते हैं। जैसे इस देश में सिंह केसरिया रंग वीरता का, श्वेत रंग सत्य व पवित्रता का, हरा रंग हरियाली का व प्रसन्नता का, नीला रंग शांति का, लाल रंग प्रेम का, क्रांति का, शृंगाल (सियार) कायरता का, लोमड़ी चतुरता का, कौआ धूर्तता का, कच्छुआ धीमी गति का, अश्व पौरुषता व सौन्दर्य का, कबूतर शांति आदि का प्रतीक सर्वमान्य हो गए हैं। लोक में भी और साहित्य में भी।

काल जगत् में प्रतीकों हका प्रयोग खूब हुआ है। जैसे– जयशंकर प्रसाद की कामायनी महाकाव्य में मनु–मन का, मानव जाति का, श्रद्धा–हृदय का, इडा बुद्धि का प्रतीक रूप में भी रचित है। पद्‌मावत में भी मलिक मुम्मद जायसी ने पद्‌मावती को ईश्वर का, नागमती को माया का, राजा रत्नसेन जीव का, हीरामन सुग्गा गुरु का प्रतीक रूप में सूफी समुदाय के अनुकूल आया है।

काव्य में प्रतीक, उपमा, रुपक, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकारों में प्रयुक्त होता है। इसमें (प्रतीक में) सादृष्य और साधर्म्य के साथ भावों को जागृत व प्रेरित करने की क्षमता होती है। घनानंद की रचना 'इश्क लता' में प्रतीक आए हैं। इसमें स्वयं को प्रेमी और ईश्वर को प्रियतम का प्रतीक मान कर ये कृति रचि गई है।

इश्कलता में प्रियतम (ब्रह्म) के मादक रूप छलनामयी प्रवृत्ति, उलाहने अपने सनेह की अतिशयता का चित्रण हुआ है। इस रचना में यदि ब्रजचंद, मनमोहन एवं नंद का सोहणा हटा कर ज्ञान, सुजान, जानमणि, जानराय आदि रख दिया जाए तो यह काव्य पूर्णतः लौकिक प्रेम की रचना हो जायेगी।''[21]

शैली व्यक्तिगत अनुभूति की स्पष्ट अभिव्यंजना है। रचना की प्रस्तुती का ढंग और उसका प्रभाव पृथक–पृथक हो सकता है। शैलियाँ अलग–अलग इसी से बनती है। शैली मूलतः रचनाकार के व्यक्तित्व एवं लेखन की कला की विशिष्ट पहचान है। इसी से हर रचना का अपनी शैली और विषय के अनुरूप पाठक या श्रोता पर प्रभाव पड़ता है। कुछ शैली मन पर कोमल, स्नेह व उदात्त आदि भावों का सौंदर्य बोध कराती हैं। मानव की सहज प्रवृत्ति है निर्माण व सृजन। इसके पूर्व वह उसकी मानसिक रूपरेखा तैयार करता है। इसे मूर्त प्रदान करने हेतु वह अपनी रुचि एवं स्वभाव के अनुरूप उसका रूप निर्धारित कर एक माध्यम देता है, जो शैली के नाम से अभिहित है। कवि इसके लिए अपनी अभिव्यक्ति को एक विशेष ढंग से प्रस्तुत करता है। इसी प्रस्तुति का आन्तरिक पक्ष है शैली और बाह्य पक्ष है शिल्प। यह शैली रचना के सृजन के साथ ही आकार ले लेता है। मगर शिल्प का विकास होता जाता है। कवि अपनी इच्छा, संवेदना, अनुभूति और कल्पना को मूर्त रूप देने के लिए छंद, अलंकार, भाषा, शैली व शिल्प को साथ–साथ लेकर चलता है। जैसे– अजंता में बुद्ध की एक ही मूर्ति में जो हास्य, करुण व शांत भाव तीन कोणों से प्रतीत होता है। वह उसकी शैली है, परन्तु बुद्ध के चेहरे की बनावट भारतीय, चिनी, तिब्बती, जापानी छाप जो बाहरी पक्ष से उसकी बनावट के स्वरूप पर दिखाई पड़ती है वह शिल्प है।

वफन ने कहा है – शैली ही व्यक्तित्व है एवं चेस्टर फील्ड ने शैली को विचारों का परिधान बताया है।''[22] घनानंद का हृदय विशाल था और इनके हृदय में भी संयोग से अधिक वियोग पक्ष की भावनाओं का तो कुछ कहना ही नहीं। चूंकि भावनाएं कवि की वे स्व–अनुभूति अतल तक पहुँची हुई हैं। अतः यह शैली अधिक जीवंत हो गई है। प्रायः घनानंद काव्य में भाव प्रधान शैली की प्रधानता है।

रीतिकालीन रीति मुक्त कवि घनानंद ने अपनी काव्य रचनाओं से अपने समकालीन कवियों में गौरव प्राप्त किया। काव्य की आत्मा कहे जाने वाले पक्ष कलापक्ष में घनानंद का कोई सानी दिखाई नहीं देता। महाकवि सूरदास के बाद ब्रज भाषा पर अधिकार प्राप्त करने वाले दूसरे कवि घनानंद ही माने जा सकते हैं। कला के प्रत्येक पक्ष को अपने भावों के अनुसार प्रयोग करना तथा विचारशील बनाना घनानंद की अन्यत्म विशेषता है।

संदर्भ :

1. हिन्दी कोश भाग–1, पृ. 172
2. डॉ॰ कृष्णदेव झारी, भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, पृ. 251
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 129
4. डॉ॰ कृष्ण चन्द्र वर्मा, रीतियुगीन काव्य, पृ. 151
5. आ0 रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 145–146
6. आ0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, घनानंद ग्रन्थावली, पृ. 86
7. वही, पृ. 84
8. डॉ॰ हरिराम निर्मलकर, घनानंद के काव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ. 265
9. डॉ॰ प्रणव वर्मा, रीतिकालीन कवि रूपसाहि : आचार्यत्व और कवित्व, पृ. 198
10. डॉ॰ प्रदीप कुमार सिंह, रसिकमणि महाकवि घनानंद एक आंकलन, पृ. 199
11. कृष्ण नारायण मागध, अलंकार विमर्श, पृ. 161
12. शशी सहगल, घनानंद का रचना संसार, पृ. 218
13. धीरेन्द्र वर्मा आदि ज्ञान मंडल, हिंदी साहित्य कोश, भाग–1, पृ. 249
14. डॉ0 कृष्णदेव झारी, भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत, पृ. 306
15. डॉ0 प्रदीप कुमार सिंह, रसिकमणि, महाकवि घनानंद एक अध्ययन, पृ. 201,202
16. डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, पृ. 51
17. डॉ0 मनोहर लाल गौड़, घनानंद और स्वच्छंद काव्य धारा, पृ. 195
18. शशि सहगल, घनानंद का रचना संसार, पृ. 205
19. आ0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, घनानंद ग्रन्थावली, पृ. 75
20. डॉ0 गणपति चन्द्र, साहित्यक निबंध, पृ. 139
21. आ0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, घनानंद ग्रन्थावली, पृ. 269
22. डॉ0 हरिराम निर्मलकर, घनानंद के काव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ. 237